

मेरी दृष्टि में “कर्म एवं कर्मफल मीमांसा” ग्रन्थ की उपादेयता

यदि मनुष्य कर्म और कर्मफल के रहस्य को यथार्थरूपेण जानकर शुभ कर्मों को जीवन में अपनाये रखे और अशुभ कर्मों को सर्वथा सर्वदा त्यागता रहे तो पाप कर्मों का उसके द्वारा होना तो दूर, पाप भावना भी उसमें नहीं आ सकती। शुभाशुभ कर्मों का फल तो सुख-दुःख के रूप में उसे भोगना पड़ता है —

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

नाभुक्ते क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।

चाहे वर्तमान जन्म में, चाहे परजन्म में, वर्तमान व परजन्म दोनों ही में किं वा मुक्ति से लौटकर ही क्यों न हो मनुष्य को उसके अपने द्वारा कृत शुभाशुभादि कर्मों का फल भगवान् अवश्य ही देता है।

वर्तमान समय में कर्म और कर्मफल सम्बन्धी बातों में बहुत अधिक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। इसका मूल कारण तो वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय व आर्य विद्वानों के सत्संग के अभाव का होना है। अतः वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय तथा आर्य विद्वज्जनों की संगोष्ठी द्वारा उक्त विषय को समझने-समझाने की महती आवश्यकता है। यूँ तो महर्षि पतञ्जलि जी के योगदर्शन के दूसरे पाद के तेरहवें सूत्र “सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः” पर महर्षि व्यास जी ने भाष्य करते हुए स्पष्ट कहा है कि “कर्मगतिश्चित्रा दुर्विज्ञानाश्चेति” अर्थात् कर्मफल रूप गति विचित्र और कठिनता से जानने योग्य है। कर्म और कर्मफल विषयक अनेक ग्रन्थ विद्वज्जनों ने लिखकर आर्यजनता का बड़ा भारी उपकार किया है। विद्वानों का इस विषय में कोई कम प्रयास नहीं रहा है, तथापि हमारे प्रिय बन्धु श्री सतीश आर्य जी प्रस्तुत विषय में ‘गागर में सागर’ भरने जैसा कार्य करके श्लाघ्य और अनुकरणीय बन गये हैं। “कर्म एवं कर्मफल मीमांसा” नामक विशाल ग्रन्थ बड़े ही सुन्दर, सरस, सरल तथा युक्ति-प्रयुक्त पूर्वक विवेचनात्मक ढंग से लिखकर अक्षुण्ण-अमर कीर्ति को प्राप्त करने के अधिकारी बन गये हैं। वस्तुतः ग्रन्थ विशाल ही नहीं बल्कि वेदादि सत्यशास्त्रानुमोदित प्रमाणों एवं युक्तियों से युक्त है। ग्रन्थ का स्वाध्याय जन-सामान्य को ही नहीं, प्रत्युत बुद्धी जनों के लिये भी अत्यन्त लाभकारी है। वर्तमान समय व्याप्त कर्म और कर्मफल विषयक भ्रान्ति यथा “सुख-दुःख, यश-अपयश, जय-पराजय, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि के रूप में व्यक्ति को जो कुछ प्राप्त होता या हो रहा है, यह सब उसके अपने ही किये कर्मों का फल है”, ऐसी अनेक भ्रान्तियाँ इसके स्वाध्याय से दूर होंगी। शास्त्रों के प्रमाणों व युक्तियों से तो ऐसी उपरोक्त मान्यता सर्वथा खण्डित हो जाती है। शास्त्रों में तो यह लिखा है — ‘अकर्तुरपि फलोपभोगः अन्नाद्यवत्’ (सांख्य ४.१०५) अर्थात् पाचक भोजन बनाता और वह भोजन स्वामी का भोग बनता है। “क्लेश कर्मादयः मनसि वर्तमानाः पुरुषे व्यपदिश्यन्ते, स हि तत्फलस्य भोक्तेति। यथा जयः पराजयो वा योद्धृषु

वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यन्ते ।” वे अविद्यादि क्लेश मन में विद्यमान होते हुए भी पुरुष - जीवात्मा में व्यवहृत होते हैं, क्योंकि वह पुरुष उन अविद्यादि के फलों का भोक्ता होता है । जैसे जय-पराजय योद्धाओं में रहते हुए उनके स्वामी राजा में व्यवहृत होती है । (व्यासभाष्य १.२४) । इसी प्रकार अन्यत्र —

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः ।

भर्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्य पापं गुरुस्तथा । (चाणक्य नीति ६.१०)

राष्ट्र में किये हुए पाप कर्मों का दुःख राजा को, राजा के किये पाप कर्मों का दुःख पुरोहित को भी परिणाम किं वा प्रभावरूपेण भोगना पड़ता है । और स्त्री द्वारा किये हुए पाप कर्मों का दुःख पति को तथा शिष्य के द्वारा किये हुए पाप कर्मों का दुःख गुरु को भी भोगना पड़ता है । यथार्थता तो यह है कि —

करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।

स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्धिमुच्यते । (चाणक्यनीति ६.८)

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र होने के कारण शुभाशुभ किये कर्मों का फल सुख-दुःख के रूप में स्वयं भोगता ही है । यह एक सामान्य नियम है । जीव संसार में नाना योनियों में घूमता - जन्म लेता और स्वयं ही निष्काम शुभ कर्म करके सांसारिक बन्धनों से मुक्त भी हो जाता है ।

आरम्भ में हम इस बात को जान चुके हैं कि करोड़ों कल्पों के बीत जाने पर भी स्वयं के किये कर्मों का फल भोगे बिना, जीव को छुटकारा नहीं मिल सकता । सामाजिक संबंध अन्योऽन्य आश्रित होने के कारण एक दूसरे के पुण्यापुण्य कर्मों के सुख-दुःखात्मक भोग एक दूसरे को भी भोगना पड़ता है । मनुजी के सिद्धान्तानुसार **‘कालस्य कारणं राजा, राजा राष्ट्रस्य कारणम् ।’** अर्थात् काल और राष्ट्र का कारण राजा होता है । राष्ट्रोन्नति में पुरोहित कारण बनता है, क्योंकि राजा को सुपथ पर चलने की प्रेरणा पुरोहित करता है । मन्त्री भी राजा का सहायी होता है । अतः ये दोनों राजा को पाप कर्म की ओर प्रवृत्त न होने दें । यदि राजा राष्ट्रहित को तिलाञ्जलि देकर अनिष्ट = पाप कर्म में प्रवृत्त रहेगा तो स्वाभाविक है कि पुरोहित भी राजा के पाप कर्मों का दुःख फल भोगेगा ही । यद्यपि यह भोग पुरोहित के कर्म का फल तो नहीं कहावेगा किन्तु परिणाम किं वा प्रभावरूप से तो उसे भोगना ही पड़ता है । ऐसे पति भी पत्नी को और गुरु शिष्य को पाप कर्मों या राहों की ओर न जाने दें ।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से यह विदित हो गया कि समस्त दुःखादि भोग हमारे ही कृत कर्मों द्वारा नहीं होता । दूसरों द्वारा किये पाप कर्मों के कारण भी मनुष्य को दुःख भोगना पड़ता है । आयुर्वेद में भी इस सिद्धान्त की पुष्टि मिलती है । यथा —

मातुरपचारात् पंगुः जाज्यन्धः बधिर मूकः मिन्मिन वामन प्रभृतयो जायन्ते ।

माता-पिता के किं वा माता ही के भूलादि के कारण बालक पंगु, अन्धा, बहिरा, गूंगा, हल्का, बौना आदि उत्पन्न होता है ।

लेखक के उक्त विषय में प्रयास की जितनी प्रशंसा करें उतनी कम है । लेखक का प्रयास स्तुत्य है । कर्मफल, पुनर्जन्म व परमात्मा विश्वासी प्रत्येक मनुष्य के लिए इसका स्वाध्याय अपरिहार्य / अनिवार्यतम है, ऐसा मैं मानता हूँ । यदि नर-नारी इसे पढ़ ले तो बहुत सी उलझी समस्याओं का समाधान भी उन्हें स्वतः प्राप्त हो सकेगा ।

पुस्तक का स्वाध्याय व प्रचार अधिकाधिक हो, इस आशा व विश्वास के साथ

आचार्य अर्जुनदेव
महर्षि दयानन्द वैदिक योगाश्रम
गुरुग्राम / गुड़गाँव, हरियाणा ।

